श्री लक्ष्मीधर कवि कृत

अद्वैत मकरन्द

1. **कटाक्ष–किरणाचान्त–नमन्मोहाब्धये नमः।**
अनन्तानन्द–कृष्णाय जगन्मंगलमूर्तये।।
हम उन भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार करते है जिनकी कृपादृष्टि से शरणागत भक्त का मोहसमुद्र सूख जाता है, जो अनन्त आनन्द स्वरूप, तथा जगत् का कल्याण करने वाले है।

2. **अहमस्मि सदा भामि कदाचिन्नाहमप्रियः।**
ब्रह्मैवाहमतः सिद्धं सच्चिदानन्द–लक्षणम्।।
'मैं हूँ और सदैव प्रकाशित होता हूँ, कदापि मैं स्वयं को अप्रिय नहीं बनता, अतः सिद्ध है कि सच्चिदानन्द लक्षण ब्रह्म ही मैं हूँ।

3. **मयि एवोदेति चिद्व्योम्नि जगद् गन्धर्वपत्तनम्।**
अतोऽहं न कथं ब्रह्म सर्वज्ञं सर्वकारणम्।।
मुझ चिदाकाश में ही गन्धर्वनगर के समान जगत् उत्पन्न होता है। अतः सर्वज्ञ और सर्वकारण ब्रह्म मैं कैसे नहीं हूँ !

4. **न स्वतः प्रत्यभिज्ञानात् निरंशत्वान्न चान्यतः।**
न चाश्रयविनाशान्मे विनाशः स्यादनाश्रयात्।।
स्मृति के अस्तित्व से सिद्ध है कि मेरा कभी नाश नहीं होता है, निरवयव होने से अन्य के द्वारा और मैं किसी के आश्रित नहीं होने से आश्रय नाश के द्वारा भी मेरा नाश सम्भव नहीं है।

5. **न शोषप्लोषविक्लेद च्छेदाश्चिन्नभसो मम।**
सत्यैरप्यनिलाग्न्यम्भः शस्त्रैः किमुत कल्पितैः।।
वायु, अग्नि, जल और शस्त्रों के द्वारा आकाश का क्रमशः शोषण, दहन, गीला होना और छेदन सम्भव नहीं है तब इन काल्पनिक वस्तुओं के द्वारा सत्यरुप मुझ चिदाकाश के शोषणादि के विषय में तो कल्पना ही कैसे हो सकती है!

6. **अभारूपस्य विश्वस्य भानं भा–सन्निधेर्विना।**
कदाचिन्नावकल्पेत भा चाहं तेन सर्वगः।।
जड़रूप विश्व का भान मुझ चैतन्य के सम्बन्ध विना कदापि सम्भव नहीं है, इसलिये मैं सर्वगत चैतन्य हूँ।

7. **न हि भानादृते सत्त्वं नर्ते भानं चितोऽचितः।**
चित्संभेदोऽपि नाध्यासात् ऋते तेनाहमद्वयः।।
वस्तुओं का भान उसके प्रकाशित हुए बिना सम्भव नहीं है, और जड़ वस्तुओं का भान चेतनता के बिना सम्भव नहीं है, जड़–चेतन का यह सम्बन्ध अध्यास के बिना सम्भव नहीं। अतः मैं अद्वय स्वरूप हूँ।

8. **न देहो नेन्द्रियं चाहं न प्राणो न मनो न धीः।**
ममता–परिरब्धत्वाद् आक्रीडत्वादिदंधियः।।
देह, इन्द्रिय, प्राण मन तथा बुद्धि में 'यह' बुद्धि रखकर विचरण करने के कारण तथा मेरेपने की बुद्धि के कारण वह मै नहीं हूँ।

9. **साक्षी सर्वान्वितः प्रेयान् अहं नाहं कदाचन।**
परिणामपरिच्छेद–परितापैरुपप्लवात्।।
सब को व्याप्त किया हुआ प्रिय साक्षी मैं हूँ, यह अहंकार परिणाम, सीमितता तथा त्रिविध तापों से युक्त होने के कारण कभी शुद्ध 'मैं' नही हो सकता है।

10. **सुप्तेऽहमि न दृश्यन्ते दुःखदोषप्रवृत्तयः।
अतस्तस्यैव संसारे न मे संसर्तृसाक्षिणः।।**

अहंकार के सो जाने पर दुःखदोषादि प्रवृत्तियाँ दिखाई नहीं देती है। अतः यह संसार उस अहंकार का है, मुझ साक्षी का नहीं।

11. **सुप्तः सुप्तिं न जानाति नासुप्ते स्वप्नजागरौ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनां साक्ष्यतोऽहमतदृशः।।**

सुप्त अहंकार सुषुप्ति को नहीं जानता है, और असुप्त में स्वप्न और जाग्रत दोनों अवस्थाएं नहीं है। अतः जाग्रत्स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं का साक्षी मैं उन अवस्थाओं से मुक्त हूँ।

12. **विज्ञानविरतिः सुप्तिः तज्जन्म स्वप्नजागरौ।
तत्साक्षिणः कथं मे स्युः नित्यज्ञानस्य ते त्रयः।।**

सुषुप्ति अवस्था में विशेष वृत्तिज्ञान की निवृत्ति अवस्था है, और जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था वृत्तिज्ञान का जन्म है। अतः यह तीनों अवस्था मुझ साक्षी–नित्य विज्ञान स्वरूप मुझमें कैसे हो सकती है ?

13. **षड्विकारवतां वेत्ता निर्विकारोऽहमन्यथा।
तद्विकारानुसंधानं सर्वथा नावकल्पते।।**

जन्मादि छ्ह विकारों से युक्त पदार्थोंका ज्ञाता मैं स्वयं निर्विकार हूँ, अन्यथा उनके विकारों का ज्ञान किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है।

14. **तेन तेन हि रूपेण जायते लीयते मुहुः।
विकारि वस्तु तस्यैषां अनुसंधातृता कुतः।।**

विकारी वस्तु प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होती है, अतः उन विकारों का ज्ञातृत्व उसमें कैसे हो सकता है ?

15. **न च स्वजन्म नाशं वा द्रष्टुमर्हति कश्चन।
तौ हि प्रागुत्तराभाव चरमप्रथमक्षणौ।।**

कोई भी व्यक्ति स्वयं का जन्म और नाश देखने में समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि ये दोनों उस व्यक्ति के पूर्व एवं उत्तर अभाव के अन्तिम एवं प्रथम क्षण है।

16. **न प्रकाशेऽहमित्युक्तिः यत्प्रकाशनिबन्धना।
स्वप्रकाशं तमात्मानमप्रकाशः कथं स्पृशेत्।।**

जिस प्रकाश के कारण ''मैं प्रकाशित नहीं होता हूँ'' यह युक्ति सम्भव है, उस स्वप्रकाश स्वरूप आत्मा को अज्ञान कैसे स्पर्श कर सकता है ?

17. **तथाप्याभाति कोऽप्येष विचाराभावजीवनः।
अवश्यायश्चिदाकाशे विचारार्कोदयावधिः।।**

तथापि चेतन स्वरूपता के विचार के अभाव में ही जिसका जीवन है, ऐसे अज्ञान की प्रतीति आकाश में कोहरें के समान होती है, जिसका अस्तित्त्व विचार रूपी सूर्योदय तक ही सीमित है।

18. **आत्माज्ञानमहानिद्रा जृम्भितेऽस्मिन् जगन्मये।
दीर्घस्वप्ने स्फुरन्त्येते स्वर्गमोक्षादिविभ्रमाः।।**

आत्मा के अज्ञान रूपी महानिद्रा से उत्पन्न इस जगत् रूपी दीर्घ स्वप्न में ही स्वर्ग मोक्षादि के भ्रम उत्पन्न होते है।

19. **जडाजडविभागोऽयं अजडे मयि कल्पितः।
भित्तिभागे समे चित्र चराचरविभागवत्।।**

जड़ और चेतन का विभाग मुझ चेतनता पर दीवार पर चित्रित चराचर जगत् की तरह ही कल्पित है।

20. चेत्योपरागरूपा मे साक्षितापि न तात्त्विकी।
उपलक्षणमेवेयं निस्तरंगैश्चिदम्बुधेः।।

चित्तवृत्तियों से सम्बद्ध मेरी साक्षिता भी वास्तविक नहीं है। यह मात्र मुझ निस्तरंग चैतन्य समुद्र का उपलक्षण मात्र है।

21. अमृताब्देर्न मे जीर्णिः मृषाडिण्डीरजन्मभिः।
स्फटिकाद्रेर्न मे रागः स्वाप्नसंध्याभ्रविभ्रमैः।।

मुझ अमृतस्वरूप समुद्र की इन मिथ्या वृत्तिरूप तरंगों के जन्म के कारण कोई हानि नहीं होती है। जैसे स्फटिक के पर्वत पर संध्याकाल के रंगों का कोई सम्बन्ध नहीं होता है उसी प्रकार स्वप्न के भ्रमों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

22. स्वरूपमेव मे सत्त्वं न तु धर्मो नभस्त्ववत्।
मदन्यस्य सतोऽभावात् न हि सा जातिरिष्यते।।

आकाश के समान सत् मेरा स्वरूप ही है, न कोई गुण। मुझसे भिन्न किसी अन्य सत् का अभाव होने से सत् कोई जाति नहीं है।

23. स्वरूपमेव मे ज्ञानं न गुणः सगुणो यदि।
अनात्मत्वमसत्त्वं वा ज्ञेयाज्ञेयत्वयोः पतेत्।।

यह ज्ञान स्वरूपता मेरा स्वरूप ही है, न कि गुण। यदि यह गुण होता तो ज्ञेय अथवा अज्ञेय होगा और उस स्थिति में क्रमशः अनात्मा और असद्रूप होगा।

24. अहमेव सुखं नान्यत् अन्यच्चेन्नैव तत्सुखम्।
अमदर्थं न हि प्रेयो मदर्थं न स्वतः प्रियम्।।

हम ही स्वयं सुखस्वरूप है, सुख मुझसे भिन्न कोई गुण नहीं है। यदि भिन्न है तो वह प्रिय नहीं होता और यदि मेरे लिये हो तो सिद्ध है कि वह स्वतः प्रिय नहीं है।

25. न हि नानास्वरूपं स्याद् एकं वस्तु कदाचन।
तस्मादखण्ड एवास्मि विजहज्जागतीं भिदाम्।।

एक अद्वितीय परमार्थ वस्तु कभी भी नानारूप नहीं हो सकती है। अतः अखण्ड वस्तु ही मैं हूँ जिसमें जगत् सम्बन्धी कोई भेद नहीं है।

26. परोक्षतापरिच्छेद-शाबल्यापोहनिर्मलम्।
तदसीति गिरा लक्ष्यं अहमेकरसं महः।।

'वह तुम हो' इस श्रुति वाक्य का लक्ष्यार्थ एक रस, महान्, परोक्षता तथा परिच्छेद रूप सम्बन्धों से मुक्त शुद्ध स्वरूप मैं हूँ।

27. उपशान्तजगज्जीव शिष्याचार्येश्वरभ्रमम्।
स्वतः सिद्धमनाद्यन्तं परिपूर्णमहं महः।।

मैं परिपूर्ण, महान्, स्वतः सिद्ध, अनादि-अनन्त स्वरूप ब्रह्म हूँ, जिसमें जगत्, जीव शिष्य-गुरु तथा ईश्वर आदि समस्त कल्पनाओं का अभाव है।

28. लक्ष्मीधरकवेः सूक्ति शरदम्भोजसंभृतः।
अद्वैतमकरन्दोऽयं विद्वद् भृंगैः निपीयताम्।।

लक्ष्मीधर कवि के सूक्ति रूप कमल के फूलों से सम्पन्न इस 'अद्वैत मकरन्द' का पान विद्वज्जन रूप भ्रमर अवश्य करें।

....

international Vedanta MIssion
www.vmission.org.in